तित्थयर

वर्ष ५ अंक २ : जून १९८१

जैन भवन

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

PRAKASH TRADING COMPANY

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

THE BIKANER WOOLLEN MILLS

**Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets**

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS
Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

**4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007**
Phone : 33-5969

Branch Office

**The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi**
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ५ : अंक २

जून १९८१

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

मुनि जिनविजयजी :
आजीवन अनुसन्धानरत कर्मयोगी ३७

प्राचीन जैन तीर्थ ४२

जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ ५१

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ६३

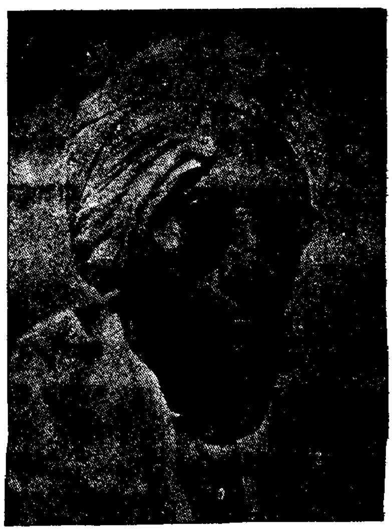

मुनि जिनविजयजी

मुनि जिनविजयजी : आजीवन अनुसंधानरत कर्मयोगी

भंवरमल सिंघी

तत्कालीन राजपूताना में मेवाड़ रियासत के रूपहली गाँव के राजपूत घराने में २७ जनवरी, १८८८ को आपका जन्म हुआ था। पितृदत्त नाम किसनसिंह था। आपकी प्रतिभा का परिचय बाल्यावस्था से ही मिलने लगा था। आपकी सम्मोहक विनयशीलता और असाधारण प्रज्ञा से गाँव के यति, जो आपके पिता का उपचार कर रहे थे, अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने आपके पिताजी से इन्हें सुशिक्षित करने का अनुरोध किया क्योंकि, वे जान गये थे कि किसनसिंह एक दिन महान् व्यक्ति बनेगा। दुर्भाग्यवश, किसनसिंह की शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था सम्पन्न करने के पूर्व ही उनके पिता का देहावसान हो गया, अतः उक्त यतिश्री ने उन्हें अपने पास रखा और अन्यान्य बालकों के साथ पढ़ाने लगे। यतिजी के सान्निध्य के कारण स्वभावतः किसनसिंह का झुकाव जैनधर्म की ओर हो गया। बाद में जब वे जैन सन्त साधुओं के अधिक निकट सम्पर्क में आये तो श्रमण जीवन के प्रति आकर्षित हुए और अन्ततः स्थानकवासी साधु-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये। उस समय आपकी उम्र केवल पन्द्रह साल थी।

जैन साधु के कर्त्तव्यों और दायित्वों का ज्ञान आपको जल्दी ही हो गया अतः जैन साधु के विधि-विधान, यम-नियम आप भली-भाँति निबाहने लगे। कुछ ही दिनों में एक चरित्रनिष्ठ साधु के रूप में आपकी ख्याति सर्वत्र फैल गयी। दिन जैसे-जैसे बीतते गये, आपका ज्ञान और अनुभव बढ़ता गया। आप महसूस करने लगे कि साधुगण, विशेषतया आप जिस सम्प्रदाय में दीक्षित थे उस सम्प्रदाय के साधु, ज्ञान के अन्वेषण और आहरण की अपेक्षा बाह्य कर्मकाण्ड पर ही अधिक बल देते थे। जिन विधि-विधानों का निर्वाह आपको करना पड़ता था, उन्हें निभाते हुए ज्ञान के क्षेत्र में पाँव बढ़ाना सम्भव नहीं था। परिणामतः आप दुविधा और कुण्ठा के शिकार हुए। इसी मनःस्थिति में जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मूर्तिपूजक सम्प्रदाय के साधु ज्ञान के अन्वेषण एवं आहरण में अधिक उद्ग्रीव और उत्कण्ठित हैं, और उनके यहाँ पण्डितों से, जो कि ब्राह्मण होते थे, व्याकरण, भाषा-शास्त्र आदि के पठन-पाठन की सुविधाएँ हैं, तब आपने राहत की सांस ली। अब आपने स्थानकवासी सम्प्रदाय छोड़कर

मूर्तिपूजक सम्प्रदाय अंगीकार किया। यह कार्य कठिन था तथापि साहसपूर्वक तमाम मुश्किलों से जूझते हुए आप उसमें दीक्षित हो गये। उस समय आपकी उम्र बाईस वर्ष की थी। दीक्षोपरान्त आपका नाम 'जिन विजय' रखा गया। कुछ ही दिनों बाद आपका साक्षात्कार हुआ आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरिजी से। उनकी ज्ञान-गरिमा से आप अत्यधिक प्रभावित हुए। आचार्यश्री के सान्निध्य में आपने जो अनुभव किया, उसने आपके समक्ष ज्ञान के अनेक नये क्षितिज उघाड़ दिये। आपको लिखने की प्रेरणा मिली और हिन्दी एवं गुजराती में आपने लिखना आरम्भ कर दिया। फलतः शीघ्र ही आप एक विद्वान लेखक के रूप में विख्यात हो गये। बाद में जब बड़ौदा में आपका वर्षायोग था तब वहाँ के रहवासियों ने आपकी काफी सहायता की। ज्ञान अभिवृद्धि के यथासम्भव साधन उपलब्ध कराये। यहीं आपके द्वारा संपादित प्राकृत ग्रंथ 'कुमारपाल प्रतिबोध' प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ ने आपकी कीर्ति को और अधिक समृद्ध किया। जब 'भण्डारकर प्राच्य शोध मन्दिर', पुणे, ने आपको सहयोग हेतु आमन्त्रित किया तब उसे सहर्ष स्वीकार कर चार महीनों की पद यात्रा करते हुए आप वहाँ पहुँचे।

पुणे में आप प्रख्यात राष्ट्रीय नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के सम्पर्क में आये। तिलक के राजनैतिक विचार एवं स्वतन्त्रता की ज्वलन्त भावनाओं से मुनिजी की चेतना को एक नया ही प्रकाश मिला। महात्मा गाँधी से भेंट का सुअवसर भी आपको यहीं मिला, उनके अहिंसात्मक विचारों ने मुनिजी के विचारों में एक नूतन क्रान्ति को जन्म दिया। १९१९ में जब गाँधीजी ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए अहिंसक आन्दोलन करने का संकल्प किया तब आपने भी अपनी सेवाएं अर्पित करने की इच्छा व्यक्त की। गाँधी जी ने आपकी इच्छा का ध्यान रखते हुए जब अहमदाबाद में राष्ट्रीय शिक्षा के निमित्त 'गुजरात विद्यापीठ' की स्थापना की तब वहाँ मुनिजी को सहयोग के लिए आमन्त्रित किया। आपने आमन्त्रण तत्काल स्वीकार कर लिया, और 'गुजरात विद्यापीठ' के अन्तर्गत 'गुजरात पुरातत्व मंदिर' के निर्देशक का पद संभाल लिया। किन्तु हाँ, इस नये पदभार को संभालने के पूर्व ही आपने साधु-वेश-सम्बन्धी विधि-निषेधों और आडम्बरों से स्वयं को मुक्त कर लिया था। आपने गाँधीजी से कहा, 'मैं विद्यापीठ में आम आदमी की तरह काम करना चाहूँगा, मुनि के प्रतिष्ठित वेश में नहीं।' गाँधीजी ने उनके इन विचारों की सराहना की। मुनिजी के मित्र पंडितप्रवर सुप्रसिद्ध दार्शनिक सुखलालजी ने भी कहा, 'सही मार्ग यही है।' तब से जिनविजयजी मुनि-वेश और बाह्य

कर्म-काण्ड विरहित मुनि रहे। आपने वहाँ आठ वर्ष तक काम किया। आपके निर्देशन में पुरातत्व मंदिर से जिन ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ उन्होंने आपकी ख्याति को अधिकाधिक बढ़ाया। इन ग्रन्थों में उद्‌भासित मुनिश्री के ज्ञान गांभीर्य ने जर्मनी के ख्यातिलब्ध विद्‌वान प्रोफेसर हर्मन जेकोबी को भी विमुग्ध कर दिया। प्रो० जेकोबी ने मुनिजी को जर्मनी आने का आमन्त्रण दिया। उन्हें कतिपय अपभ्रंश ग्रन्थों के संपादन के लिए मुनिजी की सहायता अपेक्षित थी। १६२८ में मुनिजी जर्मनी गये और लगभग डेढ़ वर्ष वहाँ रहे। इस बीच आपने बोन्न, हम्बुर्ग, बर्लिन, लीपजिग आदि विश्वविद्‌यालयों की ज्ञान-यात्राएँ कीं और वहाँ के प्राच्य-विद्‌या के प्रोफेसरों से विचार-विनिमय किया। यह आपके जीवन का बहुमूल्य और दुर्लभ भाग था। आपने जर्मन-भारत-मैत्री को प्रगाढ़ करने के लिए जर्मनी में एक भारतीय केन्द्र की स्थापना की, जिसका नाम रखा गया 'हिन्दुस्तान हाउस'। उक्त केन्द्र जर्मनी-प्रवास के समय सभी भारतीयों के लिए विशेष सहायक सिद्ध हुआ। द्वितीय महायुद्ध के समय भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम से जूझते हुए नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भी जब जर्मनी गये तब कुछ समय के लिए वहाँ ठहरे थे। जर्मनी में आप को केवल जर्मनी एवं फ्रेंच भाषाएँ सीखने के अवसर ही नहीं मिले अपितु प्राचीन प्राकृत एवं अपभ्रंश ग्रन्थों के अध्ययन के लिए अधिक गहन दृष्टि भी प्राप्त हुई। आप वहाँ के नव-सामाजिक चिंतनों से भी प्रभावित हुए। परिणामतः आप जर्मनी से एक सन्निष्ठ क्रान्तिकारी बनकर भारत लौटे। आपके व्याख्यानों और लेखों ने जैन समाज में एक नयी चेतना का संचार किया।

स्वदेश लौटते ही आपको कलकत्ता आने के लिए बहादुरसिंहजी सिंघी का निमन्त्रण मिला। सिंघीजी अपने पिताश्री की पुण्य-स्मृति में शान्ति निकेतन में 'सिंघी जैन ज्ञानपीठ' की स्थापना के सम्बन्ध में मुनिजी से परामर्श और मार्ग-दर्शन चाहते थे। आपने उक्त योजना का न केवल समर्थन किया वरन् सिंघीजी के अनुरोध पर ज्ञानपीठ के निर्देशक भी बन गये। इसी समय गाँधी-जी द्वारा नमक-सत्याग्रह छेड़े जाने से आप भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहे। अतः गुजरात के 'दर्शना' में ७५ सत्याग्रहियों के साथ आप भी सत्याग्रह पर बैठे, गिरफ्तार हुए और नासिक जेल में ६ महीने रहे। कारावास से मुक्त होने पर ही आप शान्ति निकेतन में 'जैन सिंघी ज्ञानपीठ' की योजना को क्रियान्वित कर सके। यहाँ पहुँचकर आप 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' के प्रकाशन में दत्तचित्त हो गये। यहाँ आपने जैन छात्रावास भी स्थापित किया

किन्तु जलवायु के प्रतिकूल होने से आप तीन वर्ष भी पूरे नहीं कर सके और शान्ति निकेतन छोड़ना पड़ा।

शान्ति निकेतन छोड़ने के बाद स्व० कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने बम्बई स्थित 'भारतीय विद्या भवन' के विकास में योग देने के लिए मुनिजी को आमन्त्रित किया, साथ ही आश्वासन दिया कि विद्या भवन में रहकर 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' प्रकाशन का कार्य भी वे कर सकेंगे। मुनिजी ने मुंशीजी का प्रस्ताव मान तो लिया किंतु १९४२ में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के आरम्भ होने के कारण प्रस्तावित योजना तत्काल कोई रूप नहीं ले सकी अतः आप जैसलमेर जाकर वहाँ के ज्ञान-भण्डार में संरक्षित ग्रन्थों के गहन अध्ययन में लग गये। पाँच महीनों के इस प्रवास-काल में मुनिजी ने दो सौ से अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ तैयार करवायीं। जैसलमेर का यह अनुभव भावी गवेषणाओं में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। वहाँ से लौटकर आप 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' के संपादन-प्रकाशन में पूर्ण मनोयोग से जुट गये।

स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् मुनिजी ने गाँव जाकर आत्म-निर्भर जीवन बिताने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से चित्तौड़ के निकट चंदेरी में आपने एक 'सर्वोदय साधना आश्रम' की स्थापना की। इसी बीच राजस्थान का एक नये प्रदेश के रूप में आविर्भाव हुआ। नये प्रदेश के मुख्यमंत्री स्व० हीरालाल शास्त्री ने मुनिजी से राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में विकीर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह, संरक्षण एवं प्रकाशन के लिए अनुरोध किया। प्राच्य विद्या में गवेषण एवं संकलन सम्बन्धी रुचि के कारण आपने इस दायित्व को स्वीकार कर लिया। इस तरह आप 'राजस्थान प्राच्य शोध केन्द्र' के प्रथम मानद निर्देशक बने। यहाँ आपने १९६७ तक कार्य किया। १९५२ में आप जर्मनी की विश्वविश्रुत संस्था 'ओरिएण्टल सोसायटी आफ जर्मनी' के मानद सदस्य निर्वाचित हुए। भारतीयों को यह सम्मान इससे पूर्व प्राप्त होने के अवसर कम ही आये थे। १९६१ में 'राजस्थान ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' के मानद निर्देशक के रूप में भारत सरकार ने मुनिजी को 'पद्मश्री' से विभूषित किया। उक्त संस्था से आपके निर्देशन में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्राचीन राजस्थानी में कई ग्रन्थ प्रकाशित हुए। आपके अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप यह संस्था आज एक महत्वपूर्ण शोध-संस्थान के रूप में प्रतिष्ठित है।

वार्द्धक्य एवं दृष्टि-क्षीणता के कारण १९६७ से आपने लिखना-पढ़ना आदि प्रायः सभी कार्यों से सन्यास ले लिया और चन्देरी में एकाकी रहने लगे। वैसे आप सभी कामों में उत्साहित अप्रमत्त और सावधान बने रहे। मुझे स्मरण है, जब मैं एक साल पहले उनसे मिला तब लगा कि वे इतनी उम्र में भी देश की हर प्रगति, हर परिस्थिति से परिचित थे। विनोबा की राजस्थान-पदयात्रा के समय आपने चन्देरी स्थित आश्रम उन्हें दे दिया और अपने रहने के लिए अलग से एक छोटा-सा निवास बना लिया। इसी तरह सर्वधर्म समन्वय की दृष्टि से आपने एक 'सर्वदेवायतन' नामक मन्दिर भी बनवाया। आचार्य हरिभद्र सूरी के प्रति श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करने के लिए आपने चित्तौड़ दुर्ग के सामने 'हरिभद्र स्मृति मन्दिर' की भी प्रतिष्ठा करवायी। इसी प्रकार भामाशाह की स्मृति में 'भामाशाह भारती भवन' की स्थापना की।

यह ठीक है कि आज मुनिजी हमारे बीच नहीं हैं, किन्तु यह सत्य है कि वे आज भी अमर हैं, सदा-सर्वदा रहेंगे। उनका अमर कृतित्व सदैव हमारी अन्तः प्रेरणा का उज्ज्वल स्रोत बना रहेगा और सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र के लिए शक्ति प्रदान करेगा। मुनिजी में एक सच्चे जैन की समस्त विशेषताएँ पुंजीभूत थीं। वे एक सच्चे जैन की भांति जीये, सच्चे जैन की भांति ही उनका देहावसान हुआ और एक सच्चे जैन के आदर्श रूप में ही वे सदैव चमकते रहेंगे।

मूल अंग्रेजीः अनुवाद—राजकुमारी बेगानी

प्राचीन जैन तीर्थ

प० कल्याण विजय गणी

[पूर्वानुवृत्ति]

छन्द—अतएवात्र कल्याणत्रय मन्दिरमादधे ।
श्री वस्तुपालो मन्त्रीशश्चमत्कारित भव्यहृत ॥ ६ ॥

जिनेन्द्रबिम्बपूर्णेन्द्रमण्डपस्था जना इह ।
श्री नेमेर्मज्जनं कर्तुमिन्द्रा इव चकासति ॥१०॥

गजेन्द्रपदनामास्य कुण्डं मण्डयते शिरः
सुधाविधैर्जलैः पूर्णं स्नानाहत्स्नपन क्षये ॥११॥

शत्रुंजयावतारेत्र वस्तुपालेन कारिते ।
ऋषभः पुण्डरीकोऽष्टापदो नन्दीश्वरस्तथा ॥१२॥

सिंहयाना हेमवर्णा सिद्ध बुद्ध सुतान्विता ।
कम्राम्रलुम्बिभृत पाणीऽत्राम्बा संघविघ्नहृत् ॥१३॥

—वि० ती० क० पृ० ७

यहाँ पर भगवान के तीन कल्याणक होने के कारण से ही मंत्रीश्वर वस्तुपाल ने सज्जनों के हृदय को चमत्कृत करने वाला तीन कल्याणक मन्दिर बनवाया। जिन-प्रतिमाओं से भरे इस इन्द्र मण्डप में रहे हुए, भगवान नेमिनाथ का स्नपन कराने वाले पुरुष इन्द्र की शोभा पाते हैं। इस पर्वत की चोटी को गजेन्द्रपद नामक कुण्ड, जो अमृत जैसे जल से भरा और स्नपनीय जिन-प्रतिमाओं का स्नपन कराने में समर्थ है, भूषित कर रहा है। यहाँ वस्तुपाल द्वारा कारित शत्रुंजयावतार बिहार में भगवान् ऋषभदेव, गणधर पुण्डरीक स्वामी, अष्टापद चैत्य तथा नन्दीश्वर चैत्य, यात्रियों के लिए दर्शनीय स्थल है। इस पर्वत पर सुवर्ण की-सी कान्ति वाली, सिंहवाहन पर आरूढ़, सिद्ध-बुद्ध नामक अपने पूर्वभविक दो पुत्रों को साथ लिए, कमनीय आम की लुम्ब जिसके हाथ में है, ऐसी अम्बादेवी यहाँ रहती हुई संघ के विघ्नों का विनाश करती है।

उज्जयंत तीर्थ सम्बन्धी उक्त प्रकार के पौराणिक तथा ऐतिहासिक वृतान्त बहुतेरे मिलते हैं, परन्तु उनकी विवेचना का यह योग्य स्थल नहीं। हम इसका विवेचन यहीं समाप्त करते हैं।

(३) गजाग्रपद तीर्थ

गजाग्रपद भी आचारांग निर्युक्ति निर्दिष्ट तीर्थों में से एक है, परन्तु वर्त्तमान काल में व्यवच्छिन्न हो चुका है। इसकी अवस्थिति सूत्रों में दशार्णपुर नगर के समीपवर्ती दशार्णकूट पर बताई गई है। आवश्यक चूर्णि में भी इस तीर्थ को दशार्णदेश के दशार्णपुर का समीपवर्ती पहाड़ी तीर्थ लिखा है और इसकी उत्पत्ति का वर्णन भी दिया है, जिसका संक्षिप्त सार नीचे दिया जाता है।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर दशार्ण देश में विचरते हुए अपने श्रमण संघ के साथ दशार्णपुर के समीपवर्ती एक उपवन में पधारे। राजा दशार्णभद्र को उद्यान पालक ने भगवान के पधारने की बधाई दी।

श्री भगवन्त का आगमन सुनकर राजा बहुत ही हर्षित हुआ। उसने सोचा, कल ऐसी तैयारी के साथ भगवन्त को वन्दन करने जाऊँगा और ऐसे ठाठ से वन्दन करूँगा जैसे ठाठ से न पहले किसी ने किया होगा न भविष्य में कोई करेगा। उसने सारे नगर में घोषणा करवा दी कि कल अमुक समय में राजा अपने सर्व परिवार के साथ भगवान महावीर को वन्दन करने जाएँगे और नागरिक गण को भी उसका अनुगमन करना होगा।

राजकीय कर्मचारीगण उसी समय से नगर की सजावट, चतुरंगिणी सेना को सज्ज करने तथा अन्यान्य समयोचित तैयारियाँ करने के कामों में जुट गए। नागरिकगण भी अपने-अपने घर, हाट सँवारने, रथ, यान, पालकियों को सजाने लगे।

दूसरे दिन प्रयाण का समय आने के पहले ही सारा नगर ध्वजाओं, तोरणों, पुष्पमालाओं से सुशोभित था। मुख्य मार्गों में जल छिड़कवाकर फूल बिखेरे गए थे, राजा दशार्णभद्र, उसका सम्पूर्ण अन्तःपुर और दास-दासीगण अपने योग्य यानों (वाहनों) से भगवान के वन्दनार्थ रवाना हुए, और नागरिक गण भी रथों, पालकियों आदि में बैठकर राजकुटुम्ब के पीछे उमड़ पड़े।

महावीर की धर्म सभा की तरफ जाते हुए राजा के मन में सगर्व हर्ष था। वह अपने को भगवान महावीर का सबसे शक्ति[illegible] भक्त मानता था। ठीक इसी समय स्वर्ग के इन्द्र ने भगवान महावीर के विहार-क्षेत्र को लक्ष्य करके अवधि ज्ञान का उपयोग किया और देखा कि भगवान दशार्णकूट पहाड़ी के निकटस्थ उद्यान में विराजमान हैं, और राजा दशार्णभद्र अद्वितीय सज-धज के साथ उन्हें वन्दना करने जा रहा है। इन्द्र ने भी इस प्रसंग से लाभ उठाना

चाहा, वह अपने ऐरावत हाथी पर आरूढ़ होकर दिव्य परिकर के साथ क्षण भर में महावीर के पास आ पहुँचा। उसने तीन प्रदक्षिणा देकर दशार्णकूट पर्वत की एक लम्बी-चौड़ी चट्टान पर अपना वाहन ऐरावत हाथी उतारा। दिव्य शक्ति से इन्द्र ने हाथी के अनेक दाँतों पर अनेक-अनेक बावडियों में अनेक-अनेक कमल और कमलों की कर्णिकाओं पर देवप्रासाद और उनमें होने वाले बत्तीस पात्रबद्ध नाटकों के अद्‌भुत दृश्य दिखलाकर राजा की शक्ति और सजावट को निस्तेज बनाया और उसके अभिमान को नष्ट कर दिया। राजा ने देखा इन्द्र की शक्ति के सामने मेरी शक्ति नगण्य है। भला सूर्य प्रकाश के सामने छोटा-सा सितारा कैसे चमक सकता है। उसने अपने पूर्व भव के धर्म कृत्यों की न्यूनता जानी और भगवान महावीर का वैराग्यमय उपदेशामृत पाकर संसार का मोह छोड़कर श्रमणधर्म में दीक्षित हो गया।

दशार्णकूट की जिस विशाल शिला पर इन्द्र का ऐरावत खड़ा था, उस शिला में उसके अगले पगों के चिह्न सदा के लिए बन गए। बाद में भक्तजनों ने उन चिह्नों पर एक बड़ा जिन चैत्य बनवाकर उसमें भगवान महावीर की मूर्ति प्रतिष्ठित करवायी, तब से इस स्थान का नाम 'गजाग्रपद' तीर्थ सदा के लिए अमर हो गया। आज वह 'गजाग्रपद' भूला जा चुका है। यह स्थान भारत भूमि के किस प्रदेश में था यह भी निश्चित रूप से कहना कठिन है फिर भी हमारे अनुमान के अनुसार मालवा के पूर्व में और आधुनिक बुन्देलखण्ड प्रदेश में कहीं होना सम्भावित है।

(४) धर्मचक्र तीर्थ

आचारांग निर्युक्ति सूचित चौथा 'धर्मचक्र' तीर्थ है। इस तीर्थ की उत्पत्ति का विवरण आवश्यक निर्युक्ति तथा उसकी प्राचीन प्राकृत टीका में नीचे लिखे अनुसार मिलता है—

> कल्लं सब्बिड्ढीए पूएमहऽदट्ठु धम्मचक्कं तु।
> विहरइ सहस्समेगं छउमत्थो भारहे वासे ॥३३५॥

अर्थात् भगवान ऋषभदेव हस्तिनापुर से विहार करते हुए पश्चिम में बहली प्रदेश की राजधानी तक्षशिला[२] के उद्यान में पधारे। वनपालक ने

---

२ आधुनिक पश्चिम पंजाब के रावलपिण्डी जिले में 'शाह की ढेरी' नाम से जो स्थल प्रसिद्ध है वही प्राचीनतम तक्षशिला थी, ऐसा शोधकों ने निर्णय किया है।

राजा बाहुबली को भगवान के आगमन की बधाई दी। राजा ने सोचा कल सर्वऋद्धि विस्तार के साथ भगवान की पूजा करूँगा। राजा बाहुबली दूसरे दिन बड़े ठाठ-बाट से भगवान की तरफ गया, परन्तु उसके आने के पूर्व ही भगवान वहाँ से विहार कर चुके थे। अपने पूज्य पिता ऋषभ को निवेदित स्थान तथा उसके आस-पास न देखकर बाहुबली बहुत ही खिन्न हुआ और वापिस लौटकर भगवान रात भर जहाँ ठहरे थे, उस स्थान पर एक बड़ा गोल चक्राकार स्तूप बनवाया और उसका नाम धर्मचक्र रख दिया। भगवान ऋषभदेव छद्मस्थावस्था में एक हजार वर्ष तक विचरे।

आवश्यकनिर्युक्ति गाथा के विवरण में चूर्णिकार ने धर्मचक्र के सम्बन्ध में जो विशेषता बताई है वह निम्नलिखित है—

जहाँ भगवान ठहरे थे उस स्थान पर सर्वरत्नमय, एक योजन परिधिवाला, जिस पर पाँच योजन ऊँचा ध्वजदण्ड खड़ा है, धर्मचक्र का चिह्न बनवाया।

बहली अंडवइल्ला जोणग विसओ सुवण्ण भूमि अ।
आहिंडिआ भगवआ उसभेण तवं चरंतेण ॥३३६॥
बहली अ जोणग पल्लहगा य जे भगवआ समणुसिट्ठा।
अन्ने च मिच्छजाई ते तइआ भद्दया आया ॥३३७॥
तित्थयराणं पढमो उसभरिसी विहरिओ निरूवसग्गो।
अट्ठावओ एगवरो अग्ग (य) भूमि जिणवरस्स ॥३३८॥
छउमत्थप्परिआसो वाससहस्सं तओ पुरिमताले।
एगोहस्स य हेट्ठा उप्पण्णं केवलं नाणं ॥३३९॥
फग्गुण बहुले एक्कारसीइ अह अट्ठमेण भत्तेणं।
उप्पण्णम्मि अणंते महव्वयापंच पण्णवए ॥३४०॥

अर्थात् बहली (बल्ख-बाक्तरिया) अंडवइला (अटक प्रदेश) यवन (यूनान) देश और सुवर्णभूमि (ब्रह्म-प्रदेश) इन देशों में भगवान ऋषभ ने तपस्वी जीवन में भ्रमण किया। बल्ख, यवन, पल्हग देशवासी भगवान के अनुशासन से क्रौर्य का त्यागकर भद्रपरिणामी बने। तीर्थंकरों में आदि तीर्थंकर ऋषभ मुनि, सर्वत्र निरूपसर्गता से विचरे आदि। जिनकी अग्रविहार भूमि अष्टापद पर्वत बना रहा, अर्थात् पूर्व पश्चिम भारत के देशों में घूमकर, मध्य भारत में आते तब बहुधा अष्टापद पर्वत पर ही ठहरते। भगवान् ऋषभ जिन का छद्मस्थ पर्याय (तपस्वी जीवन) हजार वर्ष तक बना रहा, बाद में आपको पुरिमताल नगर के वट-वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए केवल ज्ञान प्रकट हुआ। उस समय आपने तीन निर्जल उपवास किए थे। फाल्गुण वदी

एकादशी का दिन था, इन संजोगों में अनन्त केवलज्ञान प्रकट हुआ और आपने श्रमण धर्म के पंच महाव्रतों का उपदेश किया।

धर्मचक्र को बाहुबली ने ऋषभदेव के स्मारक के रूप में बनवाया था, परन्तु कालान्तर में उस स्थान पर जिन चैत्य बनकर जिन-प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हुईं, और इस स्मारक ने एक महान् तीर्थ का रूप धारण किया। प्रतिष्ठित जिन चैत्यों में चन्द्रप्रभ नामक आठवें तीर्थंकर का चैत्य प्रधान था, इस कारण से इस तीर्थ ने चन्द्रप्रभ के साथ अपना नाम जोड़ दिया और लम्बे काल तक वह इसी नाम से प्रसिद्ध रहा। महानिशीथ नामक जैन सूत्र में इसका वृत्तान्त मिलता है, जिसमें से थोड़ा-सा अवतरण यहाँ देना योग्य समझते हैं—

अहन्नया गोयमा ते स हुणो तं आयरियं भण्णंति जहा णं जई भयवं तुमं आणवेही ताणं अम्हेहिं 'तित्थयत्त' करि (र) य तेणायरियेणं चंदप्पहसामियं वंदिया धम्मचक्कं गंतूणमागच्छामो ताहे गोयमा अदीण मनसा अएत्तालं गम्भीर महुराए भारतीए भणियं तेणायरियेणं जहा इच्छायारेणं न कप्पई तित्थयत्तं गंतुं सुविहियाणं ता जावणं बोलेइ जत्तं तावणं अहं तुम्हें चंदप्पहं वंदावेहामी। अन्नं च जत्ताए गएहिं असंजमे पडिजइ एएणं कारणेणं तित्थयत्ता पडिसेहिज्जइ।

अर्थात् (भगवान महावीर कहते हैं) हे गौतम! अन्य समय वे साधु उस आचार्य को कहते हैं, भगवन्! यदि आप आज्ञा करें तो हम तीर्थयात्रा करने तथा चन्द्रप्रभ स्वामी को वन्दन करने धर्मचक्र जाकर आ जावें। तब हे गौतम! उस आचार्य ने दृढ़ मन से सोचकर गम्भीर वाणी से कहा—जैसे इच्छाकार से सुविहित साधुओं को तीर्थ यात्रा को जाना नहीं कल्पता[3],

[3] यहाँ यात्रा शब्द तीर्थ पर होने वाले मेले के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। महानिशीथ में ही नहीं अन्य सूत्रों में भी जैन श्रमणों को तीर्थयात्रा के लिए भ्रमण करना वर्जित किया है। निशीथ सूत्र की चूर्णि में लिखा है—उत्तरावहे धमचक्कं मथुराए देव णिम्मिओ थूहो। कोसलाए वा जियंत पडिमा तित्थकराण वा जम्मभूमियो एवमादि कारणेहिं गच्छन्तो णिक्कारणितो (२४३-२) अर्थात् उत्तरापथ में धर्मचक्र, मथुरा में देव निर्मित स्तूप, अयोध्या में जीवंत स्वामी प्रतिमा, अथवा तीर्थंकरों की जन्मभूमियों इत्यादि कारणों से देश भ्रमण करने वाला साधु निष्कारिणिक कहलाता है। उक्त महानिशीथ के प्रमाण से मेले के प्रसंग पर तीर्थ जाना साधुओं के लिए वर्जित है। परन्तु निशीथ आदि आगमों के प्रमाणों से केवल तीर्थ दर्शनार्थ भ्रमण करना ही जैन श्रमण के लिए निषिद्ध बताया है। जैन श्रमण के लिए सकारण देश भ्रमण करना विहित है, और उस प्रमाण में आने वाली तीर्थ मूर्त्तियों का दर्शन-वंदन करना आगम विहित है।

इस लिए जब यात्रा बीत जाएगी तब मैं तुम्हें चन्द्रप्रभ का वन्दन करा दूँगा। दूसरा कारण यह भी है तीर्थ यात्राओं के प्रसंगों पर साधुओं को तीर्थ पर जाने से असंयम मार्ग में पड़ना पड़ता है, इसी कारण से साधुओं के लिए यात्रा निषिद्ध की जाती है।

तक्षशिला का धर्मचक्र बहुत काल पहले से ही जैनों के हाथ से चला गया है। इसके दो कारण हैं। विक्रम की दूसरी तथा तीसरी शताब्दी में बौद्ध धर्म का पर्याप्त प्रचार हो चुका था, यही नहीं तक्षशिला विश्वविद्यालय में हजारों बौद्ध भिक्षुक तथा उनके अनुयायी छात्रगण विद्याध्ययन करते थे। इसी कारण से तक्षशिला तथा पुरुषपुर (पेशावर) के प्रदेशों में हजारों की संख्या में बौद्ध उपदेशक घूम रहे थे। इसके अतिरिक्त शशेनियन लोगों के भारत पर होने वाले आक्रमण की जैन संघ को पहले ही सूचना मिल चुकी थी, आज से तीसरे वर्ष में तक्षशिला का भंग होने वाला है, इससे जैन संघ धीरे-धीरे तक्षशिला से पंजाब की तरफ आ गया था। कुछ लोग दक्षिण की तरफ पहुँचकर जलमार्ग से कच्छ तथा सौराष्ट्र तक चले गए। जाने वाले लोग अपनी धन सम्पत्ति को ही नहीं, अपनी पूज्य देव-मूर्त्तियों तक को वहाँ से हटा ले गए थे। इस दिशा में अरक्षित जैन स्मारकों तथा मन्दिरों पर बौद्ध धर्मियों ने अपना अधिकार कर लिया। तक्षशिला का धर्म चक्र जो चन्द्रप्रभ का तीर्थ माना जाता था उसको भी बौद्धों ने अपना लिया था, और उसे बोधिसत्व चन्द्रप्रभ का प्राचीन स्मारक होना उद्घोषित किया। बौद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग जो कि विक्रम की सातवीं शती में भारत आया था, अपने भारत यात्रा विवरण में लिखता है—"यहाँ पर पूर्वकाल में बोधिसत्व चंद्रप्रभ ने अपना मांस प्रदान किया था, जिसके उपलक्ष्य में मौर्य सम्राट ने उसका यह स्मारक बनवाया है।"

उक्त चीनी यात्री के उल्लेख से यह तो निश्चित हो जाता है कि धर्मचक्र विक्रम की सातवीं शती के पहले ही जैनों के हाथ से चला गया था। निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि शशेनियन लोग जो ईसा की तीसरी शती में आक्रामक बनकर तक्षशिला के मार्ग से भारत में आए, उस समय के लगभग ही धर्मचक्र में बौद्धों का स्मारक बन चुका होगा।

(५) अहिच्छत्रा पार्श्वनाथ

आचारांग निर्युक्ति सूचित पार्श्व अहिच्छत्रा नगरी स्थित पार्श्वनाथ है।

भगवान पार्श्वनाथ प्रव्रजित होकर तपस्या करते हुए एक समय कुरु जंगल देश में पधारे। वहाँ शंखावती नगरी के समीपवर्ती एक निर्जन स्थान में आप ध्यान निमग्न खड़े थे, तब उनके पूर्वभव के विरोधी कमठ नामक असुर ने आकाश से घनघोर जल बरसाना प्रारम्भ किया। बड़े जोरों की वृष्टि हो रही थी। कमठ की इच्छा यह थी कि पार्श्वनाथ को जलमग्न करके इनका ध्यान भंग किया जाए। ठीक इसी समय धरणेन्द्र नागराज भगवान को वन्दन करने आया और भगवान पर मूसलाधार वृष्टि होती देखी। धरणेन्द्र ने भगवान के ऊपर अपने फन को छत्र रूप से तान दिया और इस अकाल वृष्टि करने वाले कमठ का पता लगाया। यही नहीं उसे ऐसे जोरों से धमकाया कि तुरन्त उसने अपने दुष्कृत्य को बन्द किया, और भगवान पार्श्वनाथ के चरणों में सिर नमाकर उसने धरणेन्द्र से माफी माँगी। जलोपद्रव के शान्त होने पर, नागराज धरणेन्द्र ने अपनी दिव्य शक्ति के प्रदर्शन द्वारा भगवान की बहुत महिमा की। उस स्थान पर कालान्तर में भक्त लोगों ने एक बड़ा जिन प्रासाद बनवाकर उसमें पार्श्वनाथ की नागफण-छत्रालंकृत प्रतिमा प्रतिष्ठित की। जिस नगरी के समीप उपर्युक्त घटना घटी थी, वह अहिच्छत्रा नगरी के नाम से प्रसिद्ध हो गयी।

अहिच्छत्रा विषयक विशेष वर्णन सूत्रों में उपलब्ध नहीं होता, परन्तु जिनप्रभसूरि ने 'अहिच्छत्रा नगरी' कल्प में इस तीर्थ के सम्बन्ध में कुछ विशेष बातें कही हैं, जिनमें से कुछ एक नीचे दी जाती हैं।

"(अहिच्छत्रा) पार्श्व जिन चैत्य की पूर्व दिशा भाग में सात मधुर जल के कुण्ड अब भी विद्यमान हैं। इन कुण्डों के जल में स्नान करने वाली मृतवत्सा स्त्रियों (निंदुओं) की प्रजा स्थिर (जीवित) रहती है। उन कुण्डों की मिट्टी से धातुवादी लोग सुवर्ण सिद्धि होना बताते हैं।"

"पार्श्वनाथ की यात्रा करने आए हुए यात्रीगण भी जब भगवान का स्नपन महोत्सव करते हैं, उस समय कमठ दैत्य यहाँ पर प्रचण्ड पवन, वृष्टि, बादलों की गड़गड़ाहट और विद्युत की चमक द्वारा दुर्दिन कर देता है।"

"मूल चैत्य से थोड़ी दूर पर सिद्ध क्षेत्र में धरणेन्द्र पद्मावती सेवित पार्श्व-नाथ का मन्दिर बना हुआ है।"

"नगर के दुर्ग के समीप नेमिनाथ की मूर्त्ति से सुशोभित सिद्ध-बुद्ध नामक दो बालक समन्वित हाथ में आम्रफलों की डाली लिए सिंह पर आरूढ़ अम्बिका देवी की मूर्त्ति प्रतिष्ठित है।"

"यहाँ उत्तरा नामक एक निर्मल जल से भरी बावड़ी है, जिसके जल में नहाने तथा उसकी मिट्टी का लेप करने से कोढ़ियों का कोढ़ रोग शान्त हो जाता है।"

"यहाँ के धन्वन्तरि नामक कुएँ की पीली मिट्टी से आमनाय वेदियों के उपदेशानुसार प्रयोग करने से सोना बनता है।"

"यहाँ ब्रह्मकुण्ड के किनारे मण्डूक पर्णी ब्राह्मी पत्तों का चूर्ण एकवर्णी गाय के दूध के साथ सेवन करने से मनुष्य की बुद्धि और निरोगता बढ़ती है और उसका स्वर गन्धर्वका-सा मधुर बन जाता है।"

"बहुधा अहिच्छत्रा के उपवनों में सभी वृक्षों पर बन्देक (चंदया) उगे हुए मिलते हैं, जो अमुक-अमुक कार्य-साधक होते हैं। यही नहीं वहाँ के उपवनों में जयन्ती, नागदमणी, सहदेवी, अपराजिता, लक्ष्मणा, त्रिपर्णी, नकुली, सकुली, सर्पाक्षी, सुवर्णशिला, मोहनी, श्यामा, रविभक्ता (सूर्यमुखी), निर्विषी, मयूर-शिखा, शल्या, विशल्यादि अनेक महौषधियाँ मिलती हैं।"

"अहिच्छत्रा में विष्णु, शिव, ब्रह्मा, चण्डिकादि के मन्दिर तथा ब्रह्मकुण्ड आदि अनेक लौकिक तीर्थ स्थान भी बने हुए हैं। यह नगरी सुगृहीत नामधेय, कण्वऋषि की जन्मभूमि मानी जाती है।"

उपर्युक्त अहिच्छत्रा तीर्थस्थान वर्तमान में कुरुदेश के किसी भूमि भाग में खण्डहरों के रूप में भी विद्यमान है या नहीं, इसका विद्वानों को पता लगाना चाहिए।

(६) रथावर्त पर्वत तीर्थ

प्राचीन जैन तीर्थों में रथावर्त पर्वत को निर्युक्तिकार ने छठे नम्बर पर रखा है। यह पर्वत आचारांग टीकाकार शीलांकसूरि के कथनानुसार अन्तिम दश पूर्वधर आर्य वज्र स्वामी के स्वर्गवास का स्थान था। पिछले कतिपय लेखकों का मन्तव्य है कि वज्रस्वामी के अनशनकाल में इन्द्र ने आकर रथ में बैठकर इस पर्वत की प्रदक्षिणा की थी, जिससे इसका नाम 'रथावर्त' पड़ा था। परन्तु यह मन्तव्य हमारी राय में प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि आर्य वज्रस्वामी के अनशन का समय विक्रमीय प्रथम शताब्दी का अन्तिम भाग है जबकि आचारांग निर्युक्तिकार श्रुतधर भद्रबाहु स्वामी आर्य वज्रस्वामी से सेकड़ों वर्ष पहले हो गये हैं। इससे पर्वत का रथावर्त यह नाम भद्रबाहु स्वामी के पूर्वकाल का है इसमें शंका को स्थान नहीं।

रथावर्त पर्वत किस भू-प्रदेश में था, इस बात का विचार करते समय हमें आर्य वज्रस्वामी के अन्तिम समय के विहार क्षेत्र पर विचार करना होगा। आर्य वज्र स्वामी अपनी स्थविर अवस्था में सपरिवार मालव देश में विचरते थे, ऐसा जैन ग्रन्थों के उल्लेखों से जाना जाता है। उस समय भारत में बड़ा भारी द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष प्रारम्भ हो चुका था। साधुओं को भिक्षा मिलना तक कठिन हो गया था। एक दिन तो स्थविर वज्रस्वामी ने अपने विद्या बल से आहार मँगवाकर साधुओं को दिया और कहा बारह वर्ष तक इसी प्रकार विद्या पिण्ड से शरीर निर्वाह करना होगा, इस प्रकार जीवन-निर्वाह करने में लाभ मानते हों तो वैसा करें, अन्यथा अनशन द्वारा जीवन का अन्त कर दें। श्रमणों ने एक मत से अपनी राय दी कि इस प्रकार दूषित आहार द्वारा जीवन निर्वाह करने से तो अनशन से देह त्याग करना ही अच्छा है। इस पर विचार करके आर्य वज्रस्वामी ने अपने एक शिष्य वज्रसेन मुनि को थोड़े से साधुओं के साथ कोंकण प्रदेश में विहार करने की आज्ञा दी और कहा जिस दिन तुमको एक लक्ष सुवर्ण से निष्पन्न भोजन मिले तब जानना कि दुर्भिक्ष का अन्तिम दिन है। उसके दूसरे ही दिन से अन्न संकट हलका होने लगेगा। अपने गुरुदेव की आज्ञा सिर चढ़ाकर वज्रसेन मुनि ने कोंकण देश की तरफ विहार किया और वज्र-स्वामी ने पाँच सौ मुनियों के साथ रथावर्त पर जाकर अनशन प्रारम्भ किया।

वज्रस्वामी के उपर्युक्त वर्णन से जाना जा सकता है कि वज्रसेन के विहार करने पर स्वामीजी स्वयं भी तुरन्त वहाँ से अनशन के लिए रवाना हो गए हैं, और निकट प्रदेश में ही रहते हुए रथावर्त पर्वत पर अनशन किया। प्राचीन विदिशा नगरी (आज का भिलसा) के समीप पूर्वकाल में 'कुंजरावर्त' तथा 'रथावर्त' नामक दो पहाड़ियाँ थीं। वज्रस्वामी ने इसी रथावर्त नामक पर्वत पर अनशन किया होगा, और यही रथावर्त पर्वत जैनों का प्राचीन तीर्थ रहा होगा, ऐसा हमारा मत है।

[क्रमशः

जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ

[पूर्वानुवृत्ति]

गुजराती : कन्हैयालाल भाईशंकर दवे　　　　अनुवाद : भँवरलाल नाहटा

शान्ता

मातंग यक्ष के साथ यक्षिणी रूप में शान्ता को शास्त्रकारों ने बतलाया है। इसका वर्ण स्वर्ण जैसा, वाहन हाथी और चारों हाथों में वरद, अक्षमाला, अभय और त्रिशूल धारण करने का विधानकार कहते हैं, जबकि दिगम्बर शास्त्रकार सुपार्श्वनाथ स्वामी की यक्षिणी काली को बताते हुए उसका वाहन वृषभ, वर्ण श्वेत और चार हाथों में घण्टा, त्रिशूल, फल और वरद आदि आयुध कहते हैं। दिगम्बरों का यह वर्णन कितने ही अंशों में शैव देवियों के अनुरूप होना मालूम पड़ता है। इस यक्ष की परिकर के अतिरिक्त कोई स्वतंत्र प्रतिमा नहीं देखी जाती। गुजरात के बाहर के प्रान्तों में पटनो देवी के मन्दिर में ऐसी एक प्रतिमा प्राप्त होने का श्री वृन्दावन भट्टाचार्य ने सूचित किया है।[२४]

विजय

चन्द्रप्रभ भगवान के इस यक्ष का वर्ण नील, हंस वाहन, तीन नेत्र एवं चक्र और मुद्गर धारी दो हाथ होता है। दिगम्बरों के प्रतिष्ठासारोद्धार में इनका वर्ण श्याम, तीन नेत्र और चार हाथों में फल, अक्षमाला, परशु और वरद मुद्रा होना बतलाया है। इसकी भी स्वतंत्र प्रतिमाओं का तो अभाव ही है।

भृकुटी

विजय यक्ष के साथ यक्षिणी भृकुटी अथवा ज्वाला को बतलाते हुए इसका वर्ण पीला, वाहन सिंह और इसके चार हाथों में क्रमशः खड्ग, मुद्गर, परशु और ढाल धारण किया बतलाया गया है। कितने ही ग्रन्थकार इसका वाहन वराह, हंस या बिडाल (बिल्ली) भी कहते हैं।[२५] दिगम्बरों के मतानुसार इन भगवान की यक्षिणी ज्वाला या ज्वालामालिनी बतला कर इसका वर्ण श्वेत, वाहन महिष, आठ हाथों में क्रमशः चक्र, वज्र, बाण, ढाल, त्रिशूल, तलवार, धनुष आदि सूचित किया है। विद्या देवियों में निर्दिष्ट महाज्वाला इसी देवी

२४　Jain Images, p. 127.

२५　देखिए शिल्प रत्नाकर १२, श्लोक ४२।

का स्वरूप हो ऐसा तर्क उठता है। चन्द्रप्रभ भगवान के परिकरों में इस यक्षिणी की कितनी ही मूर्त्तियाँ मिलती हैं। अन्य प्रान्तों में पटनी देवी के मन्दिर में भृकुटी देवी की प्रतिमा होना ज्ञात हुआ है।[२१]

अजित

सुविधिनाथ तीर्थंकर जिनका अपर नाम पुष्पदन्त कहा जाता है—का यक्ष अजित का वर्ण श्वेत, वाहन कूर्म और चार हाथ में मातुलिंग, माला, नकुल और माला धारण किया हुआ होता है। दिगम्बर ग्रन्थों के कथनानुसार इसके प्रत्येक हाथ में फल, माला, शक्ति और वरद मुद्रा होना बतलाया गया है। इस यक्ष की कोई स्वतंत्र मूर्त्ति गुजरात में प्राप्त होना ज्ञात नहीं है।

सुतारका

अजितयक्ष के साथ की यक्षिणी सुतारका का वर्ण श्वेत, वाहन वृषभ एवं चार हाथ हैं जिनमें वरद, अक्षमाला, अंकुश और कलश धारण किये हैं। दिगम्बर संप्रदाय सुविधिनाथ की यक्षिणी रूप में महाकाली बतलाते हुए उसके हाथ में वज्र, मुद्गर, फल और वरद मुद्रा का होना सूचित किया है। महाकाली की गणना विद्यादेवी के मण्डल में भी की हुई है। इस यक्षिणी की छोटी-बड़ी कितनी ही मूर्त्तियाँ सुविधिनाथ भगवान के परिकर में मिलती है।

ब्रह्मा यक्ष

शीतलनाथ भगवान का यक्ष शास्त्रकारों ने ब्रह्मा बतलाया है। उसकी मूर्त्ति हिन्दू धर्म के ब्रह्मा जैसी कहकर सिर्फ आयुधों में थोड़ा फेर-फार बतलाया है। इस यक्ष का वर्ण श्वेत, कमलासन पर बैठे, चार मुख, तीन नेत्र और आठ हाथ और उनमें मातुलिंग, मुद्गर, पाश, अभय, नकुल, गदा, अंकुश और अक्ष सूत्र बतलाया है। दिगम्बर ग्रन्थकार भी यक्ष का ऐसा ही वर्णन प्रस्तुत करते हैं केवल आयुधों में धनुष, दण्ड, ढाल, तलवार और वरद मुद्रा विशेषतः बतलाई है। अवशिष्ट आयुध श्वेताम्बरानुसार ही है। इस यक्ष के परिकर के अलावा स्वतंत्र प्रतिमाएँ गुजरात में जानने में नहीं आई।

अशोका

ब्रह्म यक्ष की यक्षिणी अशोका है। इसका वर्ण मूंग जैसा हरा, पद्म पर विराजित, चारों हाथों में क्रमशः वरद, नागपाश, अंकुश और बिजोरा धारण किया हुआ होता है। कोई-कोई ग्रन्थकार बिजोरा के बदले फल होना

२१ Jain Images, p. 128.

भी कहते हैं। दिगम्बर मतानुसार ब्रह्म यक्ष के साथ मानवी देवी यक्षिणी को बताते हुए उसका वर्ण हरित, वाहन वराह और आयुधों में वरद, धनुष, फल वगैरह का उल्लेख है। अशोका या मानवी देवी की कोई स्वतंत्र प्रतिमा गुजरात में पाया जाना अज्ञात है। शीतलनाथ भगवान के परिकरों में यक्ष के साथ मिलना संभव है।

यक्षेट-मनुज

श्रेयांसनाथ तीर्थंकर के इस यक्ष का वाहन वृषभ, श्वेतवर्ण, तीन नेत्र और आयुधों में क्रमशः मातुलिंग, गदा, नकुल और अक्षसूत्र का ग्रंथकार कहते हैं। दिगम्बर ग्रंथों के विधानानुसार त्रिशूल, दण्ड, माला और फल आदि बतलाया है। इस यक्ष का सामान्य वर्णन शिव जैसा है, केवल यक्ष के रूप में प्रस्तुत करते आयुधों का क्रम अलग दर्शाया है। इसे मनुज या ईश्वर रूप में भी पहचाना जाता है। गुजरात में इस यक्ष की स्वतंत्र मूर्त्तियों की प्राप्ति अज्ञात है किन्तु कलकत्ता म्युजियम में इसकी एक मूर्त्ति संप्राप्त है।

मानवी-गौरी

यक्षेट यक्ष के साथ की यक्षिणी गौरी को श्रीवत्सा नाम से भी जाना जाता है। इसका वर्ण गौर, वाहन सिंह, चार हाथ और उसके आयुधों में अंकुश, वरद, नकुल तथा मुद्‌गर सूचित किया है। त्रिषष्टिकार ने नकुल के बदले वज्र लिखा है। शिल्प रत्नाकर और अन्य ग्रन्थ नकुल के बदले कलश बतलाते हैं। इस प्रकार मानवी देवी के तीन भिन्न-भिन्न विधान ग्रन्थांतर से जाने जाते हैं। दिगम्बर मतानुसार उसका वाहन मृग और आयुधों में मुद्‌गर, कमल, कलश तथा वरद मुद्रा धारण किये होने का उल्लेख है।

मानवी देवी की एक मूर्त्ति मुख्य मन्दिर की देहरी नं० ५४ में स्थापित है। यह प्रतिमा लगभग १॥ फुट ऊँची है, इसमें शास्त्रोक्त विधानानुसार आयुध, वाहन आदि बतलाये हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मूर्त्ति की प्राप्ति होना अज्ञात है किन्तु श्रेयांसनाथ भगवान के परिकर में यक्ष के साथ कई परिकरों में होना ज्ञात होता है।

कुमार

वासुपूज्य स्वामी के इस यक्ष का वर्ण श्वेत और वाहन हंस है। ये बिजोरा, बाण, नकुल और धनुष चार हाथों में धारण किए हुए हैं। दिगम्बर ग्रन्थकार इससे भिन्न ही उल्लेख करते इसके तीन मुख, छः हाथ जिनमें क्रमशः

धनुष, नकुल, फल, गदा आदि आयुध बतलाते है। हिन्दू धर्म शास्त्रों में कुमार नाम शिवपुत्र कार्त्तिकेय का है। कुमार यक्ष की स्वतंत्र प्रतिमायें गुजरात में कहीं होना अज्ञात है। वासुपूज्य भगवान के परिकर में इसकी छोटी-बड़ी मूर्त्ति मिलनी संभव है।

चण्डा

कुमार यक्ष के साथ की यक्षिणी चण्डा है। इसका वर्ण श्याम, वाहन अश्व और आयुधों में वरद, शक्ति, पुष्प, गदा बतलाया गया है। दिगम्बर ग्रन्थों के विधानानुसार चण्डा का वाहन मगर, आयुधों में गदा, दो में कमल और चतुर्थ में वरद मुद्रा सूचित है। उसका अपर नाम गांधारी है। जैनों की सोलह विद्या-देवियों में दसवीं विद्या देवी गांधारी बतलाकर दोनों के एक होने का विकल्प है। हिन्दू धर्म शास्त्र में चण्डा-प्रचण्डा, या चण्डी भगवती दुर्गा का ही स्वरूप माना जाता है। चण्डा यक्षिणी की कोई स्वतंत्र मूर्त्ति गुजरात में प्राप्त होना अज्ञात है, किन्तु वासुपूज्य के परिकर में यक्ष के साथ तो होती ही है।

षण्मुख यक्ष

विमलनाथ भगवान का यह यक्ष है। इसका वर्ण श्वेत, वाहन मयूर, मुख छः और बारह हाथ होते हैं जिनमें फल, चक्र, बाण, तलवार, पाश, अक्षसूत्र, नकुल, चक्र, धनुष, ढाल, अंकुश और अभय दक्षिणाधः कर क्रमानुसार होता है। दिगम्बर लोग विमलनाथ स्वामी के यक्ष का चतुर्मुख नाम देते हुए इसके आठ या बारह हाथ जिनमें परशु, अक्षमणि, ढाल आदि आयुध होने का उल्लेख करते हैं। सामान्य तथा हिन्दू शास्त्र वर्णित कार्त्तिकेय का ही यह दूसरा स्वरूप है ऐसा मालूम पड़ता है, क्योंकि उसके भी छः मुख और बारह हाथों की कल्पना है परन्तु आयुधों में अन्तर है।

षण्मुख यक्ष की एक प्रतिमा गिरनार पर नेमिनाथ जिनालय की भमती के अन्धेरे भूमिगृह में स्थित है। इसके केवल चार हाथ दिखाकर इनमें से दो में अस्पष्ट आयुध और दो में अंकुश व वरद मुद्रा व्यक्त करते हुए यक्ष को अर्द्ध पद्मासन लगा कर बैठे दिखलाया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य मूर्त्ति का अस्तित्व गुजरात में अज्ञात है।

विदिता-विजया

षण्मुख यक्ष की नायिका विदिता है जिसका अपर नाम विजया भी है। इसका वर्ण हरिताल जैसा, पद्म पर बैठे हुए, चार हाथ जिनमें क्रमशः बाण, पाश, धनुष और साँप पकड़ा हुआ होता है। दिगम्बर लोग विमलनाथ

भगवान की शासनदेवी वेरोटी बतलाकर इसके चार हाथों में से दो में साँप, तीसरे में धनुष, चौथे में बाण रखकर इसका वाहन साँप सूचित किया है। इस यक्षिणी की एक प्रतिमा गिरनार पर नेमिनाथ जिनालय की भमती में एक स्थान पर षण्मुख के साथ स्थापित है। इसमें देवी पद्मासन लगा कर बैठी है। आयुधों में अंकुश, सर्प, वरद और चौथे में अस्पष्ट वस्तु पकड़ी हुई बतलाया है। इसके अलावा विदिता की ऐसी स्वतंत्र मूर्त्ति अन्यत्र अज्ञात है। परन्तु विमलनाथ भगवान के परिकरों में इनकी छोटी बड़ी अनेकों मूर्त्तियाँ प्राप्त होना संभव है।

पाताल यक्ष

अनन्तनाथ भगवान का यह यक्ष है। इसके तीन मुख, रक्त वर्ण, वाहन मगर और छः हाथ दिखाते हुए उनमें पद्म, खड्ग, पाश, नकुल, ढाल और अक्षमाला आदि आयुध दिए हैं। दिगम्बर ग्रन्थकार भी श्वेताम्बरों के अनुरूप ही वर्णन देकर आयुधों में अंकुश, माला, धनुष, पाश, हल और फल होना बतलाते हैं। इस यक्ष की परिकरों के अतिरिक्त कोई प्रतिमा गुजरात में होना अज्ञात है।

अंकुशा

पाताल यक्ष के साथ यह यक्षिणी है। इसका वर्ण गौर, पद्मारूढ़ और चार हाथ हैं, जिनमें क्रमशः खड्ग, पाश, ढाल और अंकुश धारण किया होता है। दिगम्बर सम्प्रदाय में इसका अनंतमती नाम देकर चारों हाथों में धनुष, बाण, फल और वरदमुद्रा बतलाया है। इस यक्षिणी की कोई प्राचीन मूर्त्ति का गुजरात में अस्तित्व अज्ञात है।

किन्नर यक्ष

धर्मनाथ भगवान के इस यक्ष का वर्ण रक्त, वाहन कूर्म, तीन मुख और छः हाथ हैं जिनमें बिजोरा, गदा, अभय, अक्षमाला, कमल और नकुल धारण किया होता है। दिगम्बर लोग भी ऐसा ही वर्णन करते हुए इसका वाहन मत्स्य और आयुधों में चक्र, वज्र और अंकुश दाहिने में, वैसे ही वाम हाथ में मुद्गर, माला और वरदमुद्रा बतलाते हैं। इस यक्ष की कोई स्वतंत्र प्रतिमा देखने में नहीं आई।

कन्दर्पा

किन्नर यक्ष के साथ की यक्षिणी कन्दर्पा है। इसका वर्ण गौर, वाहन

मत्स्य और चार हाथों में कमल, अंकुश, अभय और पद्म धारण किया हुआ होता है। दिगम्बर ग्रन्थकारों के मत से धर्मनाथ स्वामी की यक्षिणी मानसी और उसका वाहन व्याघ्र एवं छः हाथों में कमल, धनुष, वरद, अंकुश, बाण और पद्म बतलाये हैं। मानसी की गणना विद्या देवियों में भी की गई है। इस यक्षिणी की कितनी ही मूर्त्तियाँ धर्मनाथ स्वामी के परिकरों में किन्नरयक्ष के साथ मिलती हैं किन्तु किसी स्वतंत्र प्रतिमा का अस्तित्व अज्ञात है।

गरुड़

शान्तिनाथ भगवान का यह यक्ष कहलाता है। इसका वर्ण श्याम, मुख वराह जैसा, वराह पर आरूढ़, चार हाथ जिनमें बिजोरा, पद्म, नकुल और अक्षमाला होती है। त्रिषष्टि शलाका चरित्र में इसका वाहन हाथी बतलाया है। जबकि दिगम्बर लोग भी इसका वर्णन श्वेताम्बरों के अनुरूप प्रस्तुत करते हुए आयुधों में कमल, फल, वज्र और चक्र होना सूचित करते हैं। इस यक्ष की कोई स्वतंत्र प्रतिमा गुजरात से तो नहीं मिली किन्तु मध्यप्रदेश के देवगढ़ किले में पश्चिम द्वार के पास एक स्तंभ पर इसकी मूर्त्ति उत्कीर्णित मिली है। इसमें गरुड़ यक्ष को वराह पर आरूढ़ एवं उसके चारों हाथों में गदा, माला, बिजोरा और साँप धारण किया हुआ दिखाया है।

निर्वाणी

गरुड़ यक्ष की इस यक्षिणी का वर्ण स्वर्णाभ, पद्मासनस्थ और चार हाथों में से दो में कमल, तीसरे में पुस्तक एवं चौथे में कमण्डल होने का रूपावतार, त्रिषष्टिकार आदि ग्रन्थकार बतलाते हैं। दिगम्बर ग्रन्थकारों ने इसे महामानसी रूप में बतलाकर इसका वाहन मयूर और आयुधों में चक्र, फल, तलवार और वरदमुद्रा बताने का सूचन किया है। महामानसी को विद्यादेवी रूप में मान्यकर इसका वाहन, आयुध आदि सरस्वती श्रुत देवी के अनुरूप कितने ही हैं। मानसी अर्थात् सरस्वती और महामानसी अर्थात् सारस्वत देवियों में सर्वश्रेष्ठ देवी। निर्वाणी यक्षिणी की कोई स्वतंत्र मूर्त्ति गुजरात में प्राप्त होना अज्ञात है किन्तु अन्य प्रान्तों में कितनी ही मूर्त्तियाँ मिली हैं। लखनऊ म्यूजियम में एक प्रतिमा प्रदर्शित है, ग्वालियर के किले में उंटी दरवाजा के पास रास्ते के बाँयें तरफ बाजू में एवं मध्य प्रान्त के उंछर स्टेट स्थित पटनी देवी के मन्दिर में भी इस यक्षिणी की मूर्त्ति मिली है।

गंधर्व यक्ष

कुंथुनाथ भगवान का यह यक्ष कहलाता है। इसका वर्ण श्याम, वाहन

हंस, चार हाथों में क्रमशः वरद, नागपाश, अंकुश और बिजोरा धारण किया हुआ होता है। जबकि दिगम्बर ग्रन्थों के मतानुसार धनुष आदि बतलाते हुए वाहन में पक्षी का उल्लेख किया है। इस यक्ष की कोई स्वतंत्र प्रतिमा गुजरात में कहीं प्राप्त होना ज्ञात नहीं। आबू पर लूणगवसही के रंग मंडप में एक यक्ष की प्रतिमा स्थापित है जिसके चार हाथ में से दो में अंकुश, तीसरे में वरद और चौथे में अस्पष्ट वस्तु ज्ञात होती है। इसे अभिनंदन स्वामी का ईश्वर यक्ष या सुपार्श्वनाथ स्वामी का मातंग यक्ष होने का पुरातत्वविद् और इतिहास प्रेमी प० पू० स्वर्गीय श्री जयन्तविजयजी महाराज ने अपने 'आबू' नामक ग्रन्थ में उल्लेख किया है, किन्तु ईश्वर या मातंग दोनों में से किसी के भी अंकुश और वरदमुद्रा होने का विधान नहीं कहा है जबकि इस मूर्त्ति के अंकुश के साथ दूसरे हाथ में वरदमुद्रा होने से वह गंधर्व यक्ष की मूर्त्ति होनी चाहिए, ऐसा अनुमान है। चूँकि उसके दूसरे आयुध नहीं मिलते किन्तु चार में से दो का स्पष्ट होना ही इस विकल्प का कारण है।

बला-अच्युता

गंधर्व यक्ष की इस यक्षिणी का गौर वर्ण, मोर वाहन और चार हाथों में त्रिशूल, पम, बिजोरा और मुशंडी होना बतलाया है। शिल्प रत्नाकर में इसका स्वर्णाभ वर्ण कहा है। दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार इसका नाम विजया और वाहन वराह एवं शंख, तलवार, चक्र व वरदमुद्रा लिखा है। दिगम्बरों की विजया का विधान हिन्दू धर्म शास्त्र की वराही देवी के अनुसार कितने ही अंशों में है। उसी प्रकार बौद्ध सम्प्रदाय की मारीची के साथ भी कितना ही साम्य है। इस यक्षिणी की कोई स्वतंत्र प्रतिमा की प्राप्ति अज्ञात है किन्तु कुन्थुनाथ भगवान के परिकरों में कितनी ही उनके यक्ष के साथ मिलती है।

यक्षेन्द्र

अरनाथ भगवान के इस यक्ष का वर्ण श्याम, वाहन शेष (नाग), छः मुख और बारह हाथ बतलाया है। इनमें क्रमशः बिजोरा, बाण, खड्ग, मुद्गर, पाश, अभय, अक्षमाला, अंकुश, शूल, ढाल और नकुल धारण किया होता है। जबकि प्रवचन सारोद्धार में उसका वाहन मोर बतलाया है। त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र और शिल्प रत्नाकर में इसका वाहन शंख सूचित किया है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न ग्रंथकार इसके वाहन की विविधता लिखते हैं। दिगम्बरों के मतानुसार इसका नाम खेन्द्र और बारह हाथों में धनुष, मेघ धनुष, पाश, गदा, अंकुश, वरद, बाण, फल, माला आदि होने का सूचन है। आगे विमलनाथ

स्वामी के षण्मुख यक्ष का ऐसा ही वर्णन आया है, केवल आयुधों में फेरफार मालूम पड़ता है। संक्षेप में हिन्दू धर्म के कार्त्तिकेय के साथ इस यक्ष के विधान का अधिकांश साम्य है। इस यक्ष की एक भी प्रतिमा स्वतंत्र रूप से गुजरात में होना अज्ञात है।

धारिणी

यक्षेन्द्र के साथ की इस यक्षिणी के चार हाथ हैं जिनमें बिजोरा, कमल, अक्षमाला और पद्म धारण किया हुआ है। पद्मासन पर विराजित नील वर्णी है। दिगम्बर लोग अरनाथ स्वामी की यक्षिणी तारा बतलाते हैं और उसके हाथ में नाग, वज्र, हरिण और वरदमुद्रादि आयुध बतलाकर उसका हंस वाहन लिखते हैं। धारिणी की कोई स्वतंत्र मूर्त्ति गुजरात में प्राप्त होना अज्ञात है। अरनाथ भगवान के परिकरों में यक्षेन्द्र के साथ कितनी ही छोटी-छोटी प्रतिमाएं प्राप्त हैं।

कुबेर

मल्लिनाथ भगवान के इस यक्ष के चार मुख, श्वेत वर्ण, आठ हाथ जिनमें वरद, त्रिशूल, परशु, अभय, बिजोरा, मुद्गर, शक्ति और अक्षमाला धारण किये हुए रथ में विराजमान होने का रूपावतारकार ने बतलाया है। जबकि त्रिषष्टि शलाका चरित्र और शिल्प रत्नाकर में इसका मेघ धनुष जैसा नील वर्ण और वाहन के रूप में हाथी का उल्लेख है। दिगम्बर लोग भी इसका वाहन हाथी बतलाकर आयुधों में ढाल, धनुष, दण्ड, कमल, तलवार, परशु, पाश और वरदमुद्रा होने का विधान प्रस्तुत करते हैं। कुबेर यक्षों का अधिपति माना जाता है। इतना ही नहीं, उसे उत्तर दिशा का दिग्पाल भी बनाया गया है। कुबेर की कल्पना वैदिक, जैन और बौद्ध तीनों संप्रदायों में समान रूप से स्वीकृत होने पर भी तीनों के विधान एक जैसे नहीं मिलते। अर्थात् इसे स्वतंत्र देव रूप में स्वीकार कर विधानों में बड़ा फेरफार सूचित किया है। इस यक्ष की कोई स्वतंत्र प्रतिमा जैन यक्ष रूप में नहीं मिली किन्तु दिग्पाल रूप में अनेक प्रतिमाएं संप्राप्त हैं। दिग्पति और जैन यक्ष के विधान बिल्कुल भिन्न-भिन्न हैं अतः इसे जैन यक्ष रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

वरोट्या-धरण प्रिया

कुबेर यक्ष के साथ की इस यक्षिणी का वर्ण श्याम, पद्म पर विराजित, चार हाथ जिनमें वरद, अक्षमाला, शक्ति और बिजोरा धारण किया होता है।

दिगम्बर लोग मल्लिनाथ भगवान की यक्षिणी रूप में अपराजिता को बतलाते हैं। उसका वाहन सिंह और आयुधों में बिजोरा, तलवार, ढाल और वरदमुद्रा का उल्लेख करते हैं। वैराटी—यह विद्या देवी के रूप में भी मानी जाती है। जो कि उसके आयुधों में कितना ही फेरफार मालूम पड़ता है, फिर भी उसकी गणना की गई मालुम देती है। वैराटी की कोई मूर्त्ति गुजरात में तो नहीं मिली पर मध्य प्रान्त के उंछर स्टेट में स्थित पटनी देवी के मन्दिर में होने का श्री भट्टाचार्य बतलाते हैं। इसके अतिरिक्त मल्लिनाथ भगवान के परिकरों में इनके यक्ष के साथ कितनी ही मूर्त्तियां मिलती हैं।

वरुण

मुनिसुव्रत स्वामी के इस यक्ष के चार मुख, प्रत्येक में तीन नेत्र, वर्ण श्वेत, वृषभ वाहन, आठ हाथ, जिनमें बिजोरा, गदा, बाण, शक्ति, पाश, धनुष, पद्म, अने नकुल दक्षिणाधः कर क्रम से धारण किये हुए होते हैं। दिगम्बर ग्रंथकार वरुण यक्ष को श्वेताम्बरों से विरुद्ध आठ मुख और चार हाथ बतलाकर प्रत्येक में ढाल, तलवार, फल और वरद मुद्रा होना बतलाते हैं। वरुण हिन्दू धर्मशास्त्र का पश्चिम दिशा का दिग्पाल माना जाता है जबकि जैन संप्रदाय में इस नाम के स्वतंत्र यक्ष बतलाते हुए उसका विधान लगभग चतुर्मुख शिव जैसा निरूपण किया है। इस यक्ष की कोई स्वतन्त्र प्रतिमा प्राप्त होना अज्ञात है।

नरदत्ता-वरदत्ता

वरुण यक्ष के साथ की यक्षिणी वरदत्ता रूपावतार में बतलाया है। इसका वर्ण श्वेत, सिंहवाहन और चारों हाथ में वरद, अक्षसूत्र, त्रिशूल और बिजोरा सूचित किया है। शिल्प रत्नाकर इसका नरदत्ता या अच्छुप्ता नाम बतलाते हुए इसका वर्ण स्वर्णाभ और भद्रासन वाली कहा है। दिगम्बर ग्रन्थकार इसका नाम बहुरूपिणी प्रस्तुत करते हुए इसका वाहन नाग, वर्ण स्वर्ण जैसा और आयुधों में ढाल, खड्ग, फल और वरद मुद्रा का उल्लेख करते हैं। गुजरात में इस यक्षिणी की किसी मूर्त्ति का प्राप्त होना अज्ञात है, किन्तु मध्य प्रान्त के उंछर स्टेट स्थित पटनी देवी के मन्दिर में इसकी सुन्दर प्रतिमा रखी हुई है। इसके अतिरिक्त मुनिसुव्रत स्वामी के परिकरों में उनके यक्ष के साथ उत्कीर्णित कितनी ही प्रतिमाएं मिलनी संभव है।

भृकुटि यक्ष

नमिनाथ भगवान का यह यक्ष भी चार मुख, बारह नेत्र और आठ हाथ

धारी है। इसका पीत वर्ण, वृषभ वाहन और आयुधों में बिजोरा, शक्ति, मुद्गर व अभय मुद्रा धारण किया हुआ है। शिल्प रत्नाकर उसके आठ हाथ बतलाते हुए उन प्रत्येक में बिजोरा, शक्ति, मुद्गर, अभय, नकुल, परशु, वज्र और अक्षमाला रखते हैं। दिगम्बर ग्रन्थकारों के मतानुसार उसके हाथों में ढाल, खड्ग, धनुष, बाण, अंकुश, पद्म, चक्र और वरद मुद्रा धारण किया बतलाते हैं। तदुपरांत उनका अपर नाम नंदीग होना सूचित किया है। इस यक्ष की कोई प्रतिमा गुजरात में प्राप्त होना अज्ञात है।

गान्धारी

भृकुटि यक्ष के साथ की इस यक्षिणी का श्वेत वर्ण, हंस वाहन, चार हाथ हैं उनमें वरद, खड्ग, बिजोरा और कुंत (भाला) आदि धारण किये होते हैं। दिगम्बर लोग भृकुटि यक्ष के साथ चामुण्डा को बतलाते हुए उनके हाथ में अक्षमाला, दण्ड, ढाल, खड्ग आदि आयुधों की कल्पना करते हैं। तदुपरान्त उसका वाहन मगर बतलाया है। विद्यादेवी के रूप में भी गांधारी की गणना हुई है। गांधारी की कोई स्वतंत्र प्रतिमा गुजरात में नहीं मिली पर बाहर के प्रान्तों में मध्य प्रान्त के उंचहर स्टेट स्थित प्रसिद्ध पटनी देवी के मन्दिर में इसकी सुन्दर प्रतिमा होने का उल्लेख मिला है। नमिनाथ भगवान के परिकर में इनके यक्ष के साथ गांधारी की कितनी ही छोटी-छोटी मूर्त्तियाँ प्राप्त होना संभव है।

गोमेध

नेमिनाथ भगवान के इस यक्ष के तीन मुख, श्याम वर्ण, नर वाहन और छः हाथों वाला बतलाते हुए उनमें क्रमशः बिजोरा, परशु, चक्र, नकुल, त्रिशूल और शक्ति आदि आयुध सूचित किये हैं। दिगम्बर ग्रन्थकारों के कथनानुसार उनके आयुधों में हथोड़ा, कुलहाड़ी, दंड, फल, वज्र और वरद मुद्रा आदि मुख्यतः होते हैं। इस यक्ष का वाहन कोई पशु नहीं किन्तु नैऋत्य दिग्पाल की भाँति नर वाहन बतलाया है। दिगम्बर लोगों का इसको पुष्पयान-पुष्पक विमान बतलाने के कारण यह कुबेर सदृश समझा जाता है। गुजरात में गोमेध यक्ष की कोई स्वतंत्र प्रतिमा प्राप्त होना अज्ञात है किन्तु गुजरात से बाहर के प्रान्तों में उसकी कितनी ही मूर्त्तियाँ मिली हैं। मथुरा के कला प्रदर्शन में और देवगढ़ के किले में स्थित जैन मन्दिरों में इस यक्ष की अप्रतिम प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं।

अम्बिका

जैन सम्प्रदाय में अति प्राचीनकाल से अम्बा-अम्बिका की उपासना

चली आ रही है, जो कि उसे नेमिनाथ भगवान की शासन देवी रूप में स्वीकार किया है। फिर भी एक स्वतंत्र देवी के रूप में जैन आम्नाय में वह विशेष पूजी जाती है, अर्थात् उसका महत्त्व शासन देवी की अपेक्षा स्वतंत्र देवी के रूप में अधिक माना गया है। विविध तीर्थ कल्प में उसे मथुरा तीर्थ की रक्षिका देवी बतलाया है। इसी ग्रन्थ के अहिच्छत्र कल्प में हस्तिनापुर, प्रतिष्ठान नगर, गिरनार, ढिंपुरी और अन्य अनेक स्थलों में स्थित जैन मन्दिरों में अम्बिका की प्राचीन प्रतिमाएँ होने का उल्लेख किया है। इलोरा के गुफामन्दिरों में भी अम्बिका की प्रतिमाएं प्राप्त है। अम्बिका कल्प में उसके दो, चार या उससे भी अधिक हाथ होना सूचित किया है। इस प्रकार केवल शासन देवी रूप में ही नहीं किन्तु एक स्वतंत्र देवी रूप में जैन आम्नाय में उसका उच्च स्थान है। आचार दिनकर के भगवती मण्डल में अम्बिका को ही मुख्य देवी रूप में बतलाकर उसके परिवार में मातृकाएं, सोलह विद्या देवियाँ, चौसठ योगिनियाँ, बावन वीर, अष्ट भैरव, दश दिक्पाल, नवग्रह और क्षेत्रपाल आदि देवता बतलाये हैं। उसे कुष्माण्डी या आम्र कुष्माण्डी रूप में भी कितने ही ग्रन्थकार अभिहित करते हैं।

गोमेध यक्ष के साथ अम्बिका भी नेमिनाथ भगवान की शासन देवी है। इसका वर्ण स्वर्णाभ, सिंहवाहिनी, चार हाथ जिनमें अ म्रलुंब, पाश, अंकुश और चौथे हाथ से पुत्र को पकड़ा हुआ होता है

वैदिक धर्म में अम्बिका को जगदम्बिका स्वरूप मान्य होने से उसे साक्षात् भगवती दुर्गा का मुख्य स्वरूप मान कर पूजा जाता है। अर्थात् इस संप्रदाय में अंबा का स्थान सर्वश्रेष्ठ देवी रूप में माना जाता है। वैदिक दुर्गा का मुख्य स्वरूप अम्बा नाम से जैन शासन देवी रूप में पहचानी जाती अम्बिका यक्षिणी भिन्न ही है। क्योंकि उसकी उत्पत्ति का जो वृत्तान्त जैन ग्रन्थकारों ने आलेखित किया है वह और वैदिक अम्बा के प्राकट्य के वृत्तान्त में महदंतर है। इस प्रकार वैदिक अम्बा और यक्षिणी अम्बिका को एक स्वरूप नहीं माना जा सकता।

अम्बिका यक्षिणी की तो छोटी-बड़ी सेकड़ों प्रतिमाएं गुजरात में संप्राप्त है। इस प्रकार की प्राचीन प्रतिमाओं में आबू स्थित विमल वसही की देहरी नं० २०-२१ तथा गूढ मण्डप में अनुक्रम से दो चार और एक मिलकर कुल सात मूर्त्तियाँ स्थापित की हुई है। उसी प्रकार लूणगवसही की देहरी नं० २४

में तथा दरवाजा के बाहर एक, इस प्रकार दो मूर्त्तियाँ उस मन्दिर में भी प्राप्त है। विमल वसही में स्थित मुख्य अम्बिका के दो हाथ बतला कर एक में आम्रलुम्ब और दूसरे में बालक को पकड़ा हुआ बतलाया है। इसके अतिरिक्त इस मन्दिर की छत में तथा लूणगवसही की एक छत में अम्बिका के अप्रतिम मूर्त्ति शिल्प उपलब्ध है। प्रभास पाटण में सुविधिनाथजी के मन्दिर में अम्बिका की एक प्रतिमा है उसके चार हाथ हैं जिनमें दाहिने दो में अंकुश और कमण्डल तथा बाँये हाथों में पाश और बालक को पकड़ रखा है। इसी गाँव में दादापार्श्वनाथ नाम से प्रसिद्ध जैन मन्दिर में अम्बिका देवी की प्रतिमा है। जो विमलवसही वाली मूर्त्ति की भाँति दो हाथों वाली आम्रलुंब व बालक को पकड़े हुए निर्मित है। गिरनार पर तो अंबा माता की स्वतंत्र टूंक है, जिसमें तथा नेमिनाथ भगवान के मन्दिर में अम्बिका की मूर्त्तियाँ स्थापित हैं। कलोल के पास सेरिसा गांव के जिनालय में, पाटण के अष्टापदजी के मंदिर के भूमिगृह में अम्बिका की मूर्त्ति विराजमान देखी जाती है। पाटण से तीन क्रोश दूर बडली गांव के खुदाई में जैन तीर्थंकरों के साथ अम्बिका की भी एक प्राचीन प्रतिमा प्राप्त हुई है, जो पाटण के पंचासर पार्श्वनाथ जिनालय में रखी है। इसके उपरान्त गुजरात के प्राचीन अर्वाचीन कितने ही मन्दिरों में अम्बिका की प्रतिमाएं प्राप्त हैं जिनकी लम्बी सूची प्रस्तुत करने की यहाँ आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

गुजरात से बाहर के प्रान्तों में भी अम्बिका की कितनी ही प्राचीन प्रतिमाएं प्राप्त होने के उल्लेख मिलते हैं। मथुरा से प्राप्त लाल पाषाण की एक प्राचीन प्रतिमा कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम में रखी हुई है, उसका भास्कर्य अद्वितीय कला कौशल का सुन्दर नमूना है। इसके अतिरिक्त नौ मुनि गुफाएं, खण्डगिरि, उड़ीसा और ढांक में भी अम्बिका की सुन्दर प्रतिमाएं मिली हैं जो प्राक्कालीन और कला की दृष्टि से उत्तम आदर्श नमूना है।

अम्बिका देवी की आराधना अनेक प्रभावक आचार्यों द्वारा किये जाने का जैन ग्रन्थों में उल्लेख है। प्रियग्रन्थसूरि, मानदेवसूरि, हरिभद्रसूरि, बप्पभट्टिसूरि आदि महानुभावों ने भगवती अम्बिका की उपासना करके अनेक वादियों को पराजित करने का उल्लेख आवश्यक सूत्र की हरिभद्रीय टीका और अन्य ग्रंथों में ज्ञात हुआ है।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती । अप्रेल-मई १९८१

उपाध्याय श्री अमर मुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'भगवान बाहुबली : एक समीक्षा' (दिवाकर झा), 'ज्ञान और तप में सन्तुलन अपेक्षित है' (मुनि श्री नगराज), 'अहिंसा प्रचार : आवश्यक कर्त्तव्य' (अगरचन्द नाहटा), 'सामाजिक समस्याओं के समाधान में : जैन धर्म का योगदान' (सागरमल जैन) ।

कुशल निर्देश । मई १९८१

इस अंक में है 'एक सघन छायादार तृण संकुल कुंज' (राजकुमारी बेगानी), 'श्री देवसूरि' (श्री कल्याण विजयजी अनु० भँवरलाल नाहटा), 'आत्म-साक्षात्कार का अनुभवक्रम' (श्री सहजानन्दघनजी महाराज) ।

तीर्थंकर ।। मार्च-अप्रेल १९८१

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'नैतिक प्रतिमानों का अनेकान्तवाद' (सागरमल जैन), 'विश्व जैन सम्मेलन : एक रचनात्मक सुझाव' (नरेन्द्र कुमार सेठी), 'अनेकान्त और सर्वोदयवाद' (भागचन्द 'भास्कर'), 'बाहुबली साहित्य' (अनुक्रमणी) ।

तुलसी प्रज्ञा ।। मार्च १९८१

जैन विद्या परिषद परिशिष्टांक

आचार्य श्री तुलसी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'अप्रकाशित आगमिक साहित्य' (अगरचन्द नाहटा), 'आचारांग सूत्र : एक मानवीय दृष्टिकोण' (दयानन्द भार्गव), 'जैन आगमों में मोहनीय कर्म का स्वरूप' (श्रीचन्द चोरड़िया), 'भगवती सूत्र का वैज्ञानिक अध्ययन' (महावीर सिंह मुड़िया), 'व्यवहार : एक पर्यवेक्षण' (साध्वी यशोधरा), 'आचार-दशा के परिप्रेक्ष्य में शिष्ट समाज की संरचना' (साध्वी अशोकश्री), 'जैन आगम-विहित वर्षावास का पालि विनय पिटक के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन' (नन्दकिशोर प्रसाद), 'Some Psychological Problems in the Jaina Agamas' (T. K. Kalghatagi), 'Avasyakacurni and the Tale of Cilatiputra' (B. K. Khadabadi), 'Concept of Reality in

Jain Philosophy' (S. C. Jain), 'Penology and Jaina Scriptures' (Ramesh Chandra Chunilal Lalen), 'Rudimentary Stages of the Jnana Pentad in Jainism' (Bansidhar Bhatt).

तुलसी प्रज्ञा ।। अप्रेल १६८१

आचार्य श्री तुलसी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन हिन्दी काव्य में व्यवहृत संख्यापदक काव्य रूप' (महेन्द्र सागर प्रचण्डिया), 'श्वेताम्बर जैन ग्रन्थों के प्रारम्भिक दो प्रकाशक' (अगरचन्द नाहटा), 'जैन दर्शन में पर-नारी गमन के दोषों का समीक्षात्मक अध्ययन' (कैलाशचन्द्र जैन एवं मनीषी जैन), 'A Note on Dhanapala's Rsabhapancasika' (G. P Yadav), 'The Sruta Knowledge and the Sense of Manas' (S. C. Jain).

श्रमण ।। मई १६८१

इस अंक में है 'भगवान महावीर और उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म' (ऋषभ चन्द फौजदार), 'तीर्थंकर' (बी० सी० जैन) ।

Vol. V No. 2 : Titthayara : June 1981
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001